International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 07-10-2024, Accepted: 06-11-2024, Published: 21-11-2024
Volume 10, Issue 4, 2024, Page No. 31-36

बुंदेली कवि 'ईसुरी' के काव्य में लोक–जीवन के तत्त्व

डॉ. मनोज कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
ईसुरी 'जीवनोत्सव' के कवि हैं। उनकी रचनाओं में देहानुराग के गाढ़े रंग हैं। यूँ तो इनकी शब्द–वाटिका में भक्ति–नीति के भी फूल यत्र–तत्र खिले हैं, लेकिन प्रेम–प्रीति का सतरंगी इन्द्रधनुष जब इनके साहित्याकाश में उदित होता है, तो अद्भुत छटा बनती है। उनके प्रेम का आलम्बन 'रजऊ' है। वह बार–बार अपनी कविताओं में उसे टेरते (बुलाते) हैं। घनानंद की सुजान की तरह 'रजऊ' ईसुरी की चेतना का हिस्सा है। कविता में वह बार–बार उपस्थित होती है। कुछ लोग उसे वास्तविक मानते हैं, तो कुछ लोग उसे ईसुरी की कल्पना–कृति। जो भी हो लेकिन उसकी उपस्थिति बढ़ी सशक्त और सम्मोहक है। वह ईसुरी की कविताओं की आत्मा है।

मूल शब्दः ईसुरी, बुंदेलखंड, साहित्य, लोक संस्कृति, लोक जीवन, जीवनोत्सव

'प्रत्यक्षदर्शी लोकनाम् सर्वदर्शी भवेन्नर'

महाभारत के उद्योग पर्व में उल्लेखित उक्त पंक्ति की व्याख्या करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं, "जो लोकों का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, लोक–जीवन में प्रविष्ट होकर स्वयं अपने मानस–चक्षु से देखता है, वही व्यक्ति उसे पूरी तरह समझता–बूझता है। केवल पुस्तकस्थ विद्या से लोक तत्त्व का तत्त्व–स्पर्शी परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता है। साहित्य और लोक ये एक ही जीवन रथ के दो चक्र हैं। दोनों के संतुलित विवेक से ही जीवन की व्याख्या की जा सकती है। भारतीय साहित्य और संस्कृति के विषय में तो यह तत्त्व अक्षरशः सत्य है।"[1] इस प्रकार 'लोक' एक व्यापक शब्द है, जिसमें समस्त जीवन फैला हुआ तथा संचरणशील है। डॉ. विद्या निवास मिश्र के अनुसार लोक व्यतीत नहीं है, प्रतिक्षण उपस्थित है, वर्तमान है। लोक निर्जीव नहीं सजीव है।

बुंदेलखंड में जनकवि जगनिक के बाद यदि कोई कवि अत्यधिक लोकप्रिय हैं, तो वे 'ईसुरी' हैं। इनकी कही फागों व चौकड़ियों में बुंदेलखंड के लोक–जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम और भक्ति के अमर गायक, नीति के उपदेशक, लोकदृष्टि को समग्रता में आत्मसात करके ईसुरी ने हिंदी में माथे की बिंदी बुंदेली बोली को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित किया, विशाल शब्द–भंडार दिए, आम बोलचाल के मुहावरों को साहित्यिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया।[2] हेय समझी जाने वाली ग्रामीण फागों को उन्होंने साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठा दिलवाई। ईसुरी 'जीवनोत्सव' के कवि हैं। उनकी रचनाओं में देहानुराग के गाढ़े रंग हैं। यूँ तो इनकी शब्द–वाटिका में भक्ति–नीति के भी फूल यत्र–तत्र खिले हैं, लेकिन प्रेम–प्रीति का सतरंगी इन्द्रधनुष जब इनके साहित्याकाश में उदित होता है, तो अद्भुत छटा बनती है। उनके प्रेम का आलम्बन 'रजऊ' है। वह बार–बार अपनी कविताओं में उसे टेरते (बुलाते) हैं। घनानंद की सुजान की तरह 'रजऊ' ईसुरी की चेतना का हिस्सा है। कविता में वह बार–बार उपस्थित होती है। कुछ लोग उसे वास्तविक मानते हैं, तो कुछ लोग उसे ईसुरी की कल्पना–कृति। जो भी हो लेकिन उसकी उपस्थिति बढ़ी सशक्त और सम्मोहक है। वह ईसुरी की कविताओं की आत्मा है।

ईसुरी का पूरा नाम 'ईश्वर प्रसाद तिवारी' था, लेकिन प्रायरू 'ईसुरी' ही अधिकांश स्थानों पर देखने को मिलता है। काव्य रचना में कहीं 'ईसुर' तो कहीं 'ईसुरी' का प्रयोग किया है। झाँसी गजेटियर में उनका नाम 'ईसुरी–बब्बा' दिया है, जो ईसुरी के साथ सम्मान सूचक 'बब्बा' जोड़कर लिखा गया है।[3] इनका जन्म 1841 ई. दिन गुरुवार[4] को उत्तर प्रदेश के झांसी जिले की मऊरानीपुर तहसील के 'मेड़की' नामक गांव में हुआ। बड़े होने पर वह हमीरपुर जनपद के बगौरा गांव में निवास करने लगे थे। इनके पिता का नाम भोलानाथ अरजरिया और माता का नाम गंगादेवी था। इनका निधन 1909 में हुआ।

ईसुरी की रचनाओं में ग्राम्य संस्कृति एवं सौंदर्य का वास्तविक चित्रण मिलता है। उनकी ख्याति फाग के रूप में लिखी गई उन रचनाओं के लिए हैं, जो विशेष रूप से युवाओं में बहुत लोकप्रिय हुईं । ईसुरी की रचनाओं में बुन्देली लोक जीवन की सरसता, मादकता और सरलता अभिव्यक्त हुई है। ईसुरी की रचनाएँ जीवन के सहज श्रृंगार, सामाजिक परिवेश, राजनीति, भक्ति और नीति पर आधारित हैं। गौरी शंकर द्विवेदी ने उनकी फागों का प्रथम संकलन तैयार किया। ईसुरी को बुंदेलखंड में जितनी ख्याति प्राप्त हुई उतनी किसी अन्य कवि को नहीं हुई। ग्राम्य संस्कृति का पूरा इतिहास केवल ईसुरी की फागों में मिलता है। उनकी फागों में प्रेम, श्रृंगार, करुणा, सहानुभूति, हृदय की कसक एवं मार्मिक अनुभूतियों का सजीव चित्रण मिलता है। ईसुरी वस्तुतः बुन्देली काव्य परम्परा के जनक थे। लोक काव्य के सृष्टा ईसुरी से ही बुन्देली के लिखित काव्य परम्परा का विकास हुआ है। इसके पूर्व यह परम्परा मौखिक रूप से ही प्रचलित थी। ईसुरी का साहित्य फाग के रूप में लोक प्रसिद्ध है। लोकोत्सव के रूप में फाग होली से जुड़ा है, जो हास्य, प्रेम एवं श्रृंगार का पर्व है। जीवन के उल्लास और आनंद की लोकाभिव्यक्ति फागों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सिद्धराज में फाग को स्थान दिया तो दूसरी ओर हरिवंश राय बच्चन ने स्वयं मधुशाला में ईसुरी की आत्मा की छाया को स्वीकार किया है। वैश्विक स्तर पर इनका मूल्यांकन हुआ। ईसुरी की फागों के अंग्रेजी काव्यानुवाद किए गए, फागों पर आधारित अनेक नाटक लिखे तथा मंचित किए गए। यह दुर्भाग्य ही रहा कि इनके निधन के कुछ वर्षों बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा। तब तक काशी नगरी प्रचारणी सभा पांडुलिपियों के सर्वेक्षण का कार्य पूरा कर उसका आठ भागों में प्रकाशन कर चुकी थी।[5] ईसुरी की हस्तलिखित कोई पाण्डुलिपि नहीं मिलती है। अन्य संग्रहकर्ताओं ने अनेक कवियों की फागों के जो रजिस्टर बनाए थे, संभवतरू शुक्ल जी के सामने नहीं आ सके, परिणामस्वरूप ईसुरी का उस इतिहास में नाम दर्ज नहीं हो सका।

6

बुंदेलखंड में ईसुरी की फागें चौकड़ियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि उनमें प्रायरू चार कड़ियाँ हैं। कहीं–कहीं पाँच भी देखने को मिलती हैं, परंतु बहुत कम मात्रा में। ईसुरी ने ही सबसे पहले इस प्रकार की फागों को जन्म दिया। वे 'नरेंद्र' छंद में बंधी हैं, जो भारतीय संगीत की रीढ़ है। यह छंद 27 मात्राओं होता है। होली की फागों का शिष्ट समाज एवं साहित्य में कोई विशेष स्थान नहीं होता था। ईसुरी को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने इस प्रकार के साहित्य को समाज तथा साहित्य में विशेष स्थान दिलवाया। संगीत के सुर, लय, ताल के साथ वे बुंदेली समाज में छा गए। इनकी लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि ओरछा नरेश ने ईसुरी की प्रशंसा में ये शब्द कहे:

'रामायण तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कलिकाल में, कही ईसुरी फाग।।[7]

बुंदेलखंड के प्रख्यात विद्वान् डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त का मानना है कि 'जो बात–बात पर फाग कहता रहा हो, उसके लिए हजारों फागें लिखना कठिन काम नहीं है। ईसुरी की फागों की विषयवस्तु सीमित नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा मित्र और भौजी के विनोदपूर्ण हास–परिहास से लेकर राम और कृष्ण की भक्तिपरक भावभूमि तक, राधा–कृष्ण के प्रणय से लेकर वैराग्य को चुनौती देती वसंत ऋतु तक, जल भरती कमर की लचकन से लेकर प्रेम की तीव्र पीड़ा तक और लोक की जीवंतता से लेकर जीवन की निस्सारता के दर्शन तक को इस लोककवि ने अपनी फागों में बाँधा है।' उनके काव्य में श्रृंगार, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य अभी मनोभावों का व्यापक चित्रण है। सुप्रिद्ध समीक्षक डॉ. श्याम सुंदर दुबे ईसुरी के संदर्भ में लिखते हैं कि "जिन उद्दाम आवेगों के साथ वे जीवन के वासना–विकच परिदृश्य में प्रवेश करते हैं –उसी उपरामी निर्वेद भाव से वे मृत्यु की मीमांसा भी अपनी कविता में करते हैं। आसक्ति और अनासक्ति का पौरुष–भाव उनके निरावृत्त यक्तित्व को प्रकट करता है।..... जीवन में मृत्यु की तलाश करते हैं या मृत्यु जिन की सारी संभानाओं का स्वागत करते हैं।.... ईसुरी कहते हैं कि यह जो जीवन बाज़ार है वह एक दिन उठ जाएगा इसलिए लोक–परलोक दोनों का हित साधकर ही जीवन के मर्म को जानें।"[8]

ईसुरी ने लगभग एक हजार फागों की रचना की है। इन्हें ईसुरी के शिष्य 'धीरे पंडा' गाते थे। अपने आरंभिक काल में ईसुरी भी इन फागों को गाते रहे। धीरे पांडा के फाग गायन के समय उनके साथ दो रंगरेजिन रूपवती नर्तकियां गंगिया और सुंदरिय राई नृत्य करती थीं। यह दोनों सगी बहनें थी, ये जहाँ भी जाती थीं, वहां ईसुरी की फागों की लय पर नृत्य प्रस्तुत करती थीं। ईसुरी का ललित काव्य, धीरे पंडा का मोहक गायन तथा रंगरेजिन नर्तकियों के मादक राई नृत्य की त्रिवेणी ने इन फागों को ईसुरी के जीवनकाल में ही अजर–अमर कर दिया। ईसुरी ने स्वयं इनके गायन का श्रेय धीरे पंडा को दिया। ईसुरी की रचनाओं के माध्यम से उनकी योग्यता, व्यावहारिक ज्ञान का बोध होता है। ईसुरी की रचनाओं में निहित बुन्देली लोक जीवन की सरसता, मादकता, सरलता और रागयुक्त संस्कृति की रसीली रागिनी में मदमस्त करने की क्षमता है। ईसुरी की रचनाएँ प्रगति वर्धक, जीवन शृंगार, सामाजिक परिवेश, राजनीति, भक्तियोग, संयोग, वियोग, लौकिकता, शिक्षा चेतावनी, काया, माया पर आधारित हैं।[9] गौरी शंकर द्विवेदी ने उनकी फागों का प्रथम संकलन तैयार किया था। ईसुरी को बुंदेलखंड में जितनी ख्याति प्राप्त हुई उतनी किसी कवि को नहीं है। ग्राम्य संस्कृति का पूरा इतिहास केवल ईसुरी की फागों में मिलता है। उनकी फागों में प्रेम, शृंगार, करुणा, सहानुभूति, हृदय की कसक एवं मार्मिक अनुभूतियों का सजीव चित्रण है। ईसुरी की फागों में दिल को छूने और गुदगुदाने की अद्भुत क्षमता है। अपनी काल्पनिक प्रेमिका रजऊ को संबोधित करके लिखी गई रचनाओं के लिए ईसुरी को आलोचना और लोकनिंदा का सामना भी करना पड़ा।

बुंदेलखंड के लोककवि ईसुरी वे कवि हैं, जिनकी कविता को लोक ने सम्मानित किया। वे निकट अतीत के लोक कवि हैं, लेकिन उनकी हस्तलिपि में लिखा हुआ कोई ग्रंथ आज तक नहीं मिला। उनकी कविताओं का संग्रह बुंदेलखंड के लोककंठों में है, जिसके नित्य संस्करण निकलते हैं। इस लोककवि को जानना वास्तव में हमारे लोक जीवन की आत्मा को जानना है। इसलिए कि उनकी बुंदेली कविता में हमारे जीवन का प्रत्येक व्यवहार झाँकता है और इस लोक की सुंदरता उनके शब्द–शब्द में मानो रूप बन जाती है। शब्द सुनाई नहीं देते बल्कि वे दिखाई देते हैं। यद्यपि बुंदेलखंड में सूरश्याम तिवारी, मंगलदीन उपाध्याय, महिपत, महारानी रूपकुँवर, हीरालाल तिवारी, मीर खाँ, पं. बैजनाथ व्यास, पं. रामनारायण व्यास तथा शिवदयाल जैसे अन्य फाग लिखनेवाले कवि भी हुए, लेकिन जो प्रसिद्धि ईसुरी को मिली, वह इनमें से किसी को नहीं मिल पाई।

फाग का उत्स मूलतः शृंगार है तथा बुंदेलखंड में शृंगार कवियों की बड़ी लंबी परंपरा रही है। पद्माकर, खुमान कवि, ठाकुर, दामोदर देव, नवलसिंह कायस्थ, प्रताप साहि, पजनेश, गदाधर भट्ट, सरदार कवि, भगवंत कवि, गंगाधर व्यास तथा खयालीराम जैसे बुंदेलखंड के श्रृंगारी कवियों ने प्रभूत काव्य रचा। इसी काव्य का एक अंग फाग है। ईसुरी की प्रसिद्धि उनकी फागों के कारण है। फाग परंपरागत लोक संगीत है, जो परंपरागत रूप से बुंदेलखंड में प्रचलित रहा है। बुंदेली की तरह इसकी परंपरा राजस्थानी भाषा तथा प्राचीन गुजराती में भी रही है। फाग शब्द की उत्पत्ति 'फाल्गुन' से हुई है। इस माह में जो गीत लोक स्वर में निबद्ध किए जाकर गाए गए, वे फाग कहलाए। फागों के साथ बुंदेलखंड का सुप्रसिद्ध राई नृत्य भी देखने को मिलता रहा है। बुंदेलखंड में साखी की फाग, झूला की फाग, बुझौवल फाग (प्रश्नोत्तरी फाग), छंदयाऊ फाग, डिढ़खुरयाऊ फाग जैसे अनेक फाग प्रचलित रहे हैं।

ईसुरी ने ठेठ बुंदेलखंडी प्रतीकों को चुनते हुए रूप, श्रृंगार और प्रेम की अद्भुत फागें रची हैं। उन्होंने नायिका के नैनों की तुलना बाण, बरछी और तलवार से तो की ही है साथ ही नैनों को कसाई और शिकारी भी कहा है और एक फाग में तो ईसुरी ने उनकी तुलना पिस्तौल से करते हुए एक अद्भुत बिंब रच दिया है:

अँखियाँ पिस्तौलें सी भरकें, मारन चात समर के
गोली लाज दरद की दारू, गज कर देत नजर के,
देत लगाए सेंन के सूजन, पल की टोपी धरकें
ईसुर फैर होते फुरती में कोऊ कहाँ लौ बरकें।[10]

आशय है, यह सुंदरी अपनी आँखों से पिस्तौल सी भरकर सावधानी से किसी को मारना चाहती है। आँखों की इन पिस्तौलों

में लाज की गोली है, दर्द की बारूद भरी है, जो नजर रूपी गज से धँसी है। ईसुरी कहते हैं कि संकेत की सुई द्वारा पलकों की टोपी का निशाना साधकर ये इतनी फुरती से वार करती हैं कि इनसे कोई बच नहीं पाता अर्थात् इनके प्रेम जाल में फँस जाता है। बुंदेलखंड में स्त्रियों के द्वारा पहने जानेवाले अलंकरणों का विवरण उन्होंने इस फाग में रजऊ के मार्फत कुछ इस तरह दिया है:

जिदना रजऊ पैरतीं गानौ, जिअना होत बिरानौ।
बेंदा, बीज, दावनी, दुरकों, पाव झलरया कानों।
सरमाला, लल्लरी, बिचौली, मोरें हरा सुहानो।
पांवपोस, पैजनियां, पोरा, ईसुर कौन बखानो।[11]

ईसुरी ने केवल रजऊ के प्रेम तक ही अपने आपको सीमित नहीं रखा बल्कि उन्होंने राधा–कृष्ण से लेकर अपने लोक सौंदर्य और देशभक्तों के शौर्य को भी अपनी फागों में जहाँ एक ओर गाया वहीं दूसरी ओर उन्होंने इस संसार की निस्सारता पर भी कबीराना ठाठ के साथ फागें कहीं। नीम के पेड़ की छाया का सुंदर वर्णन करते हुए वे कहते हैं:

सीतल एई नीम की छइयाँ, घामौं व्यापत नइयाँ।
धरती नौं जे छू–छू जावैं, है लालौई डरइयाँ।[12]

अर्थात् नीम की छाया बहुत शीतल है। यहाँ धूप नहीं लगती और इसकी हरी–भरी डालियाँ धरती को छू–छू लेती हैं। ईसुरी वृक्षों के रक्षक हैं। उनकी फागों में पर्यावरण के प्रति चिंता भी है। एक फाग में वे वृक्षों पर कुल्हाड़ी चलानेवालों को कहते हैं कि उन पर क्यों कुल्हाड़ी चलाते हो, वे तो मनुष्यों के पालनकर्ता हैं। उनमें इतनी सामर्थ्य है कि वे काल को भी काट देते हैं। उन्हें भूख से रक्षा के लिए भगवान् ने उपजाया है और वे ऐसे हैं कि मृतप्राय लोगों को तरोताजा कर देते हैं:

इनपे लगे कुलरिया घालन,
भैया मानस पालन।[13]
इन्हें काटबो नईं चइयत तौ, काट देत जो कालन।
ऐसे सख भूख के लाने, लगवा दए नंद लालन।
जो कर देत नई सी 'ईसुर' भरी भराई खालन।[13]

उनकी देशभक्तों के शौर्य को परिभाषित करनेवाली पंक्तियाँ हैं:

जो कोऊ भरत भूम में, सोवै तन तरवारन खोवैं।
भागै नहिं पीठ ना देवैं, घाव सामने लेवैं।[14]

ईसुरी ने राधा और कृष्ण को लेकर अद्‌भुत फागें कहीं। राधा के सौंदर्य की उन्होंने अछूती उपमा दी। ईसुरी ने कहा:

कै निरमल दरपन के ऊपर, सुमन धरौ अरसी कौ।
ईसुर कत मुख लखत स्यामरौ, राधा चंद्रमुखी कौ॥[15]

अर्थात् कृष्ण चंद्रमुखी राधा के मुख को निहारते हैं, जो ऐसा है जैसे स्वच्छ दर्पण के ऊपर अलसी का फूल रख दिया हो। एक और फाग में उन्होंने राधा के कानों के तरकुलों की शोभा का वर्णन करते हुए कहा:

कानन डुलें राधिका जी के, लगें तरकुला नीके।
आनंदकंद चंद के ऊपर दो तारागण झीकें।
परतन पसर परत गालन पै, तरें झूमका जीके।
जिनके घर सें जौ पैराव, और जनन नें सीके।
श्याम स्नेह ईसुरी देखत, ब्रजवासी बस्ती के॥[16]

अर्थात् राधा के कानों के तरकुलों की शोभा देखते ही बनती है। ऐसा प्रचतीत होता है जैसे आनंददायक चंद्रमा के समान मुख पर दो सितारे चमक रहे हों। जब वे लेटती हैं तो इन तरकुलों में लगे झुमके राधा के गालों पर पसर जाते हैं और यह पहनावा उन्हीं के घर से दूसरों ने सीखा है।

ईसुरी के पास ऐसे भरे–पूरे समग्र चिंतन तथा चित्रण की लोक–दृष्टि है। वे सचमुच लोक–तत्त्वों के कुशल चितेरे हैं। उनके दृष्टि–पथ में लोकगीत हैं, लोकनृत्य हैं, लोकगाथाएँ और कथाएँ हैं। लोकोक्तियाँ बुझौवल (प्रश्नोत्तरी फागें) और मुहावरे हैं, लोक देवता हैं, पर्व, उत्सव, तीज–त्योहार और मेले हैं। लोकरीति पर पैनी नजर है, लोकविश्वासों में उनका विश्वास है। उनको लोक की वेशभूषा, आभूषणों की परख है, गोदना का चित्रण ही नहीं, उसे चित्रित कराने में होने वाली वेदना से वह परिचित है। घर, चबूतरा, पौर, दरवाजा, फड़ की उन्हें जानकारी है। पुरुषों की दिनचर्या से लेकर स्त्रियों के आँगन, चौका, भोजन–व्यंजन का उन्हें अनुभव है और यह भी कि विधुरत्व के क्षणों में, पत्नी के अभाव में चौका–रसोई में क्या कठिनाइयाँ होती हैं। परिवार–नियोजन न हो तो बच्चों की लंबी कतार से धोबी और बसोर की क्या परेशानियाँ होती हैं, वह इसको भी समझते और लिखते हैं। जमींदारों के घर की चौसर, उसमें समय की बर्बादी और खेत में किसान आलस्य करे तो राजा–जोगी–पांडे पर आने वाले संकट से भी वह परिचित हैं। आखिकार सबका पालनहार बेचारा गाँव का किसान होता है। वह खेती की प्रतिकूलताएँ समझते हैं। पानी न बरसे, ओले पड़े, अकाल पड़ जाए, साहूकार–जमींदार से ऋण लें तो क्या त्रासदी है, इसे वह समझते हैं। गांजे की आदत हो, बाल विवाह की, बेमेल विवाह की, झगडालू सास और ननद की सारी करतूतें वे जानते हैं। बुंदेली बारात कैसे निकलती है, जिस बारात में छह सौ छत्तीस बाराती हो, उसका स्वागत कैसे होता होगा? जब उन्हें बुंदेली पंगत में देशी घी में बनी बूंदी के गोल लड्डू की याद आती तो नायिका का 'लडुआ' जैसा मुंह उनकी आँखों के सामने झूमता है। कलात्मक चपेटा से सजी चुनरी और नए यार के लिए बनाए गए 'गजरा' देखकर औरों का मन भी हो जाता है कि वह भी यह गजरा पहन लें। विवाह में बाबा (जुगिया) शारदा और खजराए का मेला कुछ भी उनकी दृष्टि और काव्य–पय से ओझल नहीं होता है। इन सब पर उनकी कलम खुलकर चली, कहीं पूर्व लिखित, कहीं तुरंत फड़ पर बैठे–बैठे ही आशुकवि के रूप में ।

महुआ कटने से हुई पर्यावरणिक तथा आड़े वक्त (बुरे समय) भोजन के विकल्प की क्षति का कष्ट उन्हें सालता है। मगर उनके कटने से बादशाह की 'मुलक' (काफी) रेलें जो चलने लगीं उनका सुख तो है ही, भले ही पैसा देकर कहीं चले जाइए। वह लोक का आचार विधान जानते हैं– 'गौना, विवाह , मृत्यु–पूर्व तया अंत्येष्टि सभी अवसरों के चित्र खींचना ये जानते हैं तो सुरत के ऐसे चित्र उस चितेरे ने शब्दों से बनाए कि किसी को भी उल्लास और रसानंद की स्मृतियाँ जीवंत हो उठे।'[18]

अपनी स्वानुभूति तथा मानस चक्षु के आधार पर ईसुरी का रचना फलक बेहद व्यापक है। इससे उनके काव्य–लोक का वितान बुंदेलखंड के गाँवों से लेकर देश के हजारों लाखों गाँव तक फैल गया है। सभी की पीड़ा के वह गायक बन गए हैं। एक अंचल के कवि से उठकर वे देश के गाँवों के दुख–सुख, उल्लास–उच्छ्वास के सहयात्री बन गए हैं। यही उनके काव्य का विराटत्व है, संवेदनाओं और अनुभूतियों की व्यापकता है। जिसके वितान में यह समग्र लोक का प्रत्यक्ष दर्शन करते तया अपने श्रोताओं तथा पाठकों को कराते हैं। वह सचमुच शब्दों के चितेरे हैं। शब्दों से ऐसे चित्र बनाते हैं कि सामने चित्र–पट की तरह झूम जाते हैं, सम्मोहित करते हैं, चौंकाते हैं।

बुन्देखण्ड में महुआ यहाँ के नागरिकों का जीवन रक्षक वृक्ष है। जब गेंहू पिसी सब धोखा दे जाते हैं तब महुआ के लटा, महेरी,

डुबरी आदि व्यंजन खाकर किसान गुजारा करता है। यह बात एक रचनाकार भाव सिंह लोदी (दमोह) ने लगभग दो पहले लिखी थी:

महुआ भलौ राम कौ प्यारौ
गेंहूँ पिसी दगा सब दै गए।
मुहुअन देश सम्हारौ
और नाज मोटे से उपजें
जापन बसत पहारो।[19]

किंतु झाँसी से मानिकपुर रेलवे लाइन बिछाई जाने के समय उसकी योजना में महुआ के जंगल के जंगल, जो मार्ग में पड़े थे, काट दिए गए। इससे ईसुरी को कष्ट हुआ। यह उनकी नहीं, समाज और देश की पीड़ा थी। उन्होंने एक फाग में लिखा:

इनपै लगे कुलरियाँ घालन, महुआ मानस पालन।
इनैं काटबौं नई चइयत तौ, काट देत जौ कालन।
ऐसे भूँख रुख के लानें, लगवा दये नँद लालन।
जे कर देत नई सी ईसुर, मरी मराई खालन।[20]

अर्थात् अरे भाई! इन पर कुल्हाड़ियाँ चलाते हो, यह महुआ मानस के पालनहार हैं। इन्हें नहीं काटना चाहिए था, यह काल को भी काट देते हैं। अर्थात् – भूख से होने वाली मौत से बचाते हैं। यह वृक्ष भगवान (नंद लाल आदि) ने भूख से रक्षा के लिए उपजाए हैं, यह मरणासन्न लोगों में भी प्राणों का संचार कर देते हैं। मृत शरीर को भी नवप्राण देते हैं, यह फाग ईसुरी की पर्यावरण के प्रति चिंता भी व्यक्त करती है।

पर्यावरण प्रेमी के रूप में अगर हम ईसुरी की एक फाग और देखें तो पता चलता है कि ईसुरी प्रकृति के प्रति कितने सजग थे:

सीतल एइ नीम की छइयाँ, यामी व्यापत नइयाँ।
घरती नौं जे छू–छू जावें, है लालौई डरइयाँ।
फिर करबौ आराम लौट कें, अपनी जी राखइयाँ।
ऐसोंई हरौ बनी रय ईसुर, हमरे जियत गुसइयाँ।[21]

अर्थात् – नीम की छाया बहुत शीतल है, यहाँ धूप नहीं लगती है। इसकी हरी–भरी डालियों धरती को छू–छू लेती हैं। फिर लौटकर अपने मन की शांति के लिए इसकी छाया में विश्राम करेंगे। अरे नीम! यह वृक्ष जीवन भर ऐसा ही हरा–भरा रहे।

बुंदेलखंड में जल स्तर नीचा है तथा कुएँ काफी गहरे है, अनेक स्थानों पर लगभग सौ फुट से भी अधिक गहरे होते हैं, उन्हें 'साठिया कुआँ' कहते हैं। इतनी गहराई से कोमलांगी स्वियों पानी कैसे खींचती है? गाँवों के इस जल संकट का दृश्य दृष्टव्य है:

देखी पनापरिन की भीरें, कुआ गाँव के तीरें।
ऐसी घनी आजती जातीं, गैल मिले ना चीरें।
दो–दो जनी एक जोरा सें, घड़ा ऐंवती धीरें।
'ईसुर' ऐसी देखी हमनें, दई की खाई अहीरें।[22]

अर्थात् हमने गाँव के किनारे बने कुएँ पर पनिहारिनों की भीड़ देखी। वे झुण्ड के बनाकर बार–बार ऐसे आती–जाती हैं कि निकलने को रास्ता नहीं मिलता है। एक ही रस्सी से दो–दो स्त्रियां मिलकर एक घड़ा खींचती हैं। ईसुरी कहते हैं कि (ऐसी शक्ति वाली) दूध–दही–खाई अहीर की स्त्रियों को हमने देखा है।

इस वर्ष अकाल पड़ गया हैं सूखे की इस हालत में किसान की पीड़ा देखी जा सकती है:

आसों लै गई साल करौंटा, करौ ख्वाब सब खोता।
गोंऊ पिसी कों गिरुआ लग गऔ, मौंअन लग गाऔ 'लौंका'।
ककना, दौरी सब घर खाये, रै गऔ फकत अनौंटा।
कात ईसुरी बाँदै रइयो, जबर गाँठ को घौटा।[23]

अर्थात् इस वर्ष साल ने करवट सी ली है, प्रतिकूल परिस्थितियों बन गई हैं। सभी सपने बिखर गए हैं। गेंहूँ और पिसी में 'गिरुआ' नामक बीमारी लग गई है, महुआ में 'लौंका' रोग लग गया है। स्त्रियों के अनेक आभूषण कंगन, दुर आदि गिरवी रख दिए हैं, बस किसी प्रकार भरण–पोषण हो रहा है। स्त्रियों के पास सुहाग का प्रतीक आभूषण 'अनौटा' मात्र रह गया है(जिसे वे पति के रहते नहीं बेचती)। ईसुरी कहते हैं इन परेशानियों का सामना करने के लिए कमर कसके गाँठ बांध लो:

आसौं होस सबई के भूले, कइयक काँखें कूले।
कच्चे बेर बचे हैं नइयाँ कंगीरन के रूले।
दो–दो दिन के फाँके पर गए , परवत नइयाँ चूले ।
मरे जात भूँकन के मारे, अंदरा, कनवा, लूले।
मारे–मारे फिरत ईसुरी, बड़े–बड़े दिन दूले।[24]

अर्थात् – इस वर्ष फ़सल नष्ट हो जाने के कारण सभी के होश उड़ गए हैं। किसी की बुद्धि काम नहीं कर रही है। अनेको लोग भूख के कारण तड़प रहे हैं, पेड़ के ऊँचे कंगूरों पर लगे, कच्चे बेर भी शेष नहीं बचे। वे मिल जाते तो कुछ आहार मिलता। दो दिन से फांके हो रहे हैं, पेट में कुछ नहीं जा रहा है। चूल्हे भी नहीं जल रहे हैं। शरीर से समर्थ लोग तो कुछ कर भी लें, किन्तु अंधे, लंगड़े, लूले लोग भूख से मर रहे हैं। उनका अत्यंत ही बुरा हाल है।

गांवों का सभी सुख–दुःख फसल से ही होता हैं। लेकिन जब फसल पर ही संकट आता है तो किसान की क्या दर्द होता है, उसकी क्या दशा होती है? उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हम ईसुरी की निम्नवत पंक्तियों में देख सकते हैं:

भारत बिना अन्न हर सालै, परमेसुर का पालैं।
काय खाँ दुःख दयै रात है, काटइ करौ हलालैं।
सबै समेट इकट्ठौ लै जा, कात काय ना कालैं।
नौनों लगौ अकेलो ईसुर, जब सब भक्ष बडालें।[25]

इन पक्तियों से स्पष्ट है कि कितनी कारुणिक व्यथा है किसानों की। अनेक वर्षों से फ़सल हर साल नष्ट हो रही है। किसान निराश हो रहा है। ऐसे में भला परमेश्वर कैसे पाल सकेगा? काल से क्यों नहीं कहते कि दिन – रात क्यों कष्ट देते हो? सबको काटकर हलाल क्यों नहीं कर देते? यदि उसे अच्छा लगे तो वह अकेले सभी का भक्षण कर ले। इस प्रकार अनेक फागों में यह भी उल्लेख मिलता है कि फसल नष्ट हो जाने से उसके पास सरकार तथा जमींदार को मालगुजारी तथा जिमी अदा करने तक का पैसा नहीं है। किसानों की इस मर्मांतक वेदना के चित्र ईसुरी ने अनेक फागों में अभिव्यक्त किया हैं।

ईसुरी संस्कारों तथा रीति–रिवाजों के आचार विधानों के ऐसे चित्र खींचते हैं कि आँखों के सामने वैसा ही दृश्य झूलने लगता है। गाँवों में विवाह होता है, लड़की की विदा होती है। यह अत्यंत भावुक क्षण होते हैं। एक ओर पीहर छूटता है, माता–पिता, भाई–बहिन, स्वजनों के विछड़ने का दुख, दूसरी ओर एक नए ससुराल लोक में प्रवेश, पति से मिलने, उसके साथ साहचर्य पाने के जाने कितने बरसों से सँजोये गए सपने पूरे होते हैं, जिनसे दिन सोने जैसे लगते हैं, खुशी ही खुशी, फिर लोक में विदा के कुछ आचार विधान विदा के पूर्व अथवा बाद में होते हैं, यह उस

लोक अथवा कहें कि अंचल का वैशिष्ट्य होता है। लोक–संस्कृति का यह अद्‌भुत चित्र एक फाग में मिलता है

इक दिन सौनें सौ दिन होबे, बिदा होत में रोवै।
मूड़ अनाय, उपटनौ करकें, माँग भरें सिर गोबे।
एड़ी पकर महावर दीनौ, तरवन पतरीं चौबै।
डोला सजौ, चली पुर बाहर नाइनियाँ मौं धोबै।
ईसुर पती बिरत के लानै संग पती के सोबै।[26]

अर्थात् एक दिन सोने–सा दिन हो (जब स्वर्णिम सपने साकार हों), विदा होते समय में मैं रोऊँ, सिर धोकर स्नान करूँ, उबटन करके, सिंदूर से माँग भरूँ, चोटी (केश–विन्यास करूं), एड़ी पकड़कर पैर में नीचे की ओर तलवे के स्पर्श बिंदु तक महावर दूँ, तलवों के स्पर्श बिंदु पर पतली चोब सी सीकिंया महावर का श्रृंगार करूं, जब डोली चले तथा गाँव के बाहर निकले तब नाइन (एक लौटे में पानी लाकर) मेरा मुँह धोए (ताकि विदा के आंसू धुल जाए, गांव के विछोह का दुख गाँव के बाहर आकर छुट जाए) ताकि दुख का भाव चेहरे पर न रहे, उल्लास भरा दिखे। ईसुरी कहते हैं कि अपने पतिव्रत धर्म के निर्वाह के लिए पति के संग सोवे तथा उसका साहचर्य प्राप्त करे।
सोलह संस्कारों में जन्म, विवाह और मृत्यु विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। अब मृत्यु की ओर चलें। मृत्यु आसन्न है, नायिका को आभास हो गया है वह अब नहीं बचेगी, इसका जीवंत चित्र देखें। वह पति से अनुरोध करती है:

हमखौं पार देऔ भी मइयाँ, बलम उठाकें कइयाँ।
चार हाँत जाँगा लिपवा दो, गऊ के गोबर मैंया।
जी के ऊपर कुसा बिछा दो, तान दुपट्टा खैंया।
उल्टी साँस चलत ऊपर खों, भर–भर देत तरैंया ।
ईसुर सींक खुली पिंजरा की, उड़ गई राम मुनइयाँ।[27]

अर्थात् मेरी उल्टी साँस चलने लगी है, हमको अपनी गोदी में उठाकर जमीन पर लेटा दो। चार हाथ जगह गाय का गोबर मँगवाकर लिपवा दो, उसके ऊपर कुशा विछा दो, एक चादर भी तानकर बिछा दो। ईसुरी कहते हैं कि उसके बाद पिंजड़े की सींक खुल गई, उसके प्राण–पखेरू उड़ गए। आत्मा अनंत में जाकर विलीन हो गई। अंतिम समय में पति का स्नेह–सानिध्य पाने के लिए 'कइयाँ में उठाने' का जो भाव–चित्र बनता है, वह सारे परिदृश्य को आकर्षक तथा भावुक बना देता है।
भारत में लोक–संस्कृति की बात हो और मेला की चर्चा न हो, यह कैसे संभव है? जाने कितने सालों से बिछुरे परिचितों, प्रियजनों से मिलने, बतियाने का आनंद यही मेले देते हैं। लोकजीवन में वे उल्लास तथा लोकरंजन का जीवंत साधन हैं। होली मिलन, दशहरा मिलन, अक्ती के मेले, असाड़ी देवताओं के पूजन के अवसर भी इसी उल्लास की परंपरा में हैं। ईसुरी ने उनके चित्र सहृदयतापूर्वक खींचे हैं। यही मेले तो हैं जो मिलने तया उल्लास मनाने का अवसर देते हैं। बालाएं अपने छैला को विशेष रूप से ढूँढ़ती है, सज–धज कर जाती हैं, मिलने के लिए एकांत–स्थान ढूँढ़ती है, अपने वस्त्रों को इस ढंग से पहनती तथा उड़ाती है कि उन पर लोगों की नज़र पड़े। वैसे तो मेले बहुत होते हैं, किंतु खजुराहो का शिवरात्रि मेला तथा नवरात्र में शारदा देवी का मेला विशेष चर्चित है। इन दोनों मेलों के चित्र देखिए जिनमें उनकी (नायक–नायिकाओं के) मन की इच्छाएं पूरी हो जाती हैं, दिल खुश हो जाता है:

मेला खजराये कों भारी, चलौ देखियो प्यारी।
महादेव कौ दरसन करियो, पूजें आस तुम्हारी।
भाँत– भाँत के लोग जुरे हैं, लेकें अपनी प्यारी।
कात ईसुरी चलकें देखों, दिल खुश हो जै है भारी।
तन में ऐंचत काय कँदैला, हर हर दाबें बेला।
कछू उड़ै कछु आप उड़ावै, कछु जुबनन को ठेला।
चलिए मुलाकात जो करियो, काँ है ठौर अकेला।
बे पहचान अजानें हो गईं, गैल घाट को मेला।
ईसुर कौन गाँव से आईं, करन सारदा मेला।[28]

ईसुरी की निगाह 'समाज को न्याय' देने वाली कचौरी पर भी जाती है। जहाँ कोई व्यक्ति बड़ी आशा लेकर जाता है, लेकिन बिना भ्रष्टाचार के वहाँ भी कोई काम नहीं होता है। ईसुरी के शब्दों में, 'गड्डी गाड़े ढरकत नइयाँ, ओंगन बिना लगाएँ।' अर्थात् – बिना 'लुब्रीकेंट' (ओंगन) लगाए गाड़ी नहीं ढरकती है। ईसुरी एक स्थान पर लिखते हैं:

जिनकें नइयाँ चून चनन कौ, उनसे लाग मँगाएँ।[29]

(जिनके पास खाने को मोटा अनाज तक नहीं है, उनसे रिश्वत मँगाई जाती है इसके लिए खुली अदालत में कानूनगो कान में फुसफुसाकर मंत्र बता देते हैं, 'कानूनोजी कानन में लग सबखौं मंत्र बताएँ'।
ईसुरी की इन फागों से गुजरने के बाद लगता है कि वे कितने मौलिक कवि थे। जीवन का कोई पक्ष उनके काव्य से अछूता नहीं रहा। वे बहुत पढ़े–लिखे नहीं थे, लेकिन उन्हें ऐसी दिव्य देन प्राप्त थी, जिसने उन्हें अक्षर के संसार में अमर कर दिया और वे इस देन को देनेवाली देवी को कभी भूले नहीं, उनसे यही प्रार्थना करते रहे कि वे उनकी खबर लेती रहें, उनकी भूली कड़ियों को मिलाती रहें। बुंदेलखंड के लोक की यह गवाही है कि इस देवी ने सदैव अपने ईसुरी की खबर ली और उनकी कड़ियों को कभी टूटने नहीं दिया, ईसुरी ने प्रार्थना की:

मोरी खबर सारदा लइये,
कंठ विराजी रइये।
मैं अपढ़ा अच्छर ना जानो
भूली कड़ी मिलाइए॥[30]

समग्रता में ईसुरी की फागो में करुणा, प्रेम, श्रृंगार, सहानुभूति, हृदय की कसक एवं मार्मिक अनुभूतियों का सजीव चित्रण है। इसुरी ने राधा–कृष्ण व राम पर आधारित कई फागों की रचना भी की है। जिसे लोग बड़े चाव से गाते हैं। ईसुरी कवि ने अपनी फागो के माध्यम से लोगों को आपस में मिल जुलकर रहने, ईश्वर की भक्ति करके जीवन सफल बनाने तथा मानवीय मूल्यों के प्रति सजग रहने का संदेश दिया गया है। फागों के चर्चित गायक शिवनाथ सविता ने बताया कि ईसुरी लोक जीवन के सजग प्रहरी थे। उन्होंने ऋतुओं पर भी रचनाएं की है। उनका संपूर्ण जीवन लोक रक्षण के लिए था। प्रकृति सौन्दर्य, राधा–श्रीकृष्ण प्रेम पर उनकी रचनाएं बहुत मिलती है। उन्होंने बताया कि फाग बुंदेलखंड का लोककाव्य है।

संदर्भ सूची

1. कुमुद, अयोध्या प्रसाद गुप्त; भारतीय साहित्य के निर्माता ईसुरी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली– 110001; पृष्ठ–97
2. कुमुद, अयोध्या प्रसाद गुप्त; भारतीय साहित्य के निर्माता ईसुरी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001; पृष्ठ–07
3. वही; पृष्ठ–17
4. वही; पृष्ठ–16
5. वही; पृष्ठ–08

6. bundelkhandnews-com@folk&poet&isuri&still
7. गुप्त, कृष्णानंद रू ईसुरी की फागें भाग 01 रू लोकवार्ता परिषद, टीकमगढ़, म.प्र. रू सं. संवत 2003; पृष्ठ–12
8. कुमुद, अयोध्या प्रसाद गुप्त; भारतीय साहित्य के निर्माता ईसुरी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001; पृष्ठ–07
9. सिंह, सं. डॉ. राजकुमार; लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति आशीष प्रकाशन, कानपुर; सं. 2012; पृष्ठ 205
10. sahityaamrit-in@innerpage--php\pageid-849]20@08@2020]11:32
11. वही
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. वही
17. कुमुद, अयोध्या प्रसाद गुप्त; भारतीय साहित्य के निर्माता ईसुरी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001; पृष्ठ–99
18. वही; पृष्ठ–99
19. वही; पृष्ठ–102
20. वही; पृष्ठ–102
21. वही; पृष्ठ–102
22. वही; पृष्ठ–100
23. सिंह, सं. डॉ. राजकुमार; लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति आशीष प्रकाशन, कानपुर; सं. 2012; पृष्ठ 203
24. वही; पृष्ठ–204
25. वही; पृष्ठ–204
26. कुमुद, अयोध्या प्रसाद गुप्त; भारतीय साहित्य के निर्माता ईसुरी; साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35 फ़िरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001; पृष्ठ–103
27. वही; पृष्ठ–104–105
28. वही; पृष्ठ–112
29. वही; पृष्ठ–112
30. साहित्य अमृत; सं. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी; दरियागंज नई दिल्ली–110002; अंक– अप्रैल 2020